

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा की दार्शनिक प्रकृति

डॉ. श्याम लाल

आचार्य, संस्कृत

चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय

कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा का दार्शनिक स्वरूप व्यापक एवं समृद्ध तथा गहन है। बालक का सर्वाङ्गीण विकास का आधारस्तम्भ तत्कालीन शैक्षिक परम्परा रही है जो कि न केवल इहलोक अपितु परलोक में भी कल्याणकारी रही है इहलोक में आत्म साक्षरता के साथ-साथ चिन्तन एवं जिज्ञासापरक और मूल्यपरक शिक्षा व्यवस्था थी। इसके अलावा मोक्ष की प्राप्ति के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन शिक्षा के रूप में उपलब्ध रहा है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि - "सा विद्या या विमुक्तये"।¹

अर्थात् वह विद्या जो मुक्ति प्रदान करे। मुक्ति से तात्पर्य है कि मोक्ष प्राप्ति करावे यानी सच्ची विद्या वही है जो ज्ञान के साथ-साथ समझ विकसित करे, आत्मचिन्तन हेतु प्रेरित करे, जीवन का लक्ष्य तय करे, मानव जीवन का उद्देश्य क्या है? यह आत्मान्वेषण करने में मदद करें जो अन्ततः हमें जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त करवाती है। भारतीय ज्ञान परम्परा में यह उक्ति हमें शिक्षा के उद्देश्य को भी दर्शाती है -

1. "शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त कर जीविकोपार्जन तक सीमित नहीं है अपितु जो ज्ञान अर्जित किया है उसके माध्यम से भावी जीवन को सुखमय बनाने के लिए आत्म-अन्वेषण करवाकर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।"
2. विद्या वह है जो मनुष्य को विवेकशील बनाती है उसमें सही और गलत, यथार्थ और वास्तविकता, न्याय और अन्याय, उचित और अनुचित के बीच अन्तर समझने में मदद करती है।
3. शिक्षा का उद्देश्य साकार बनाने के साथ-साथ पारम्परिक और आधुनिक दृष्टिकोण से चिन्तन का अवसर देना है। पारम्परिक रूप से शिक्षा को आत्म-अन्वेषण और मुक्ति के साधन के रूप में देखा जा सकता है जबकि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कौशल और ज्ञान प्राप्त करने के साधन के रूप में जीविकोपार्जन हेतु सक्षम बनाना है।

आज के सन्दर्भ में कह सकते हैं कि विद्या समाज व राष्ट्र को निर्धनता, असमानता व भेदभाव से मुक्त करना ही विद्या का मूल उद्देश्य है। इसी उद्देश्य को मध्यनजर रखते हुए भारत में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा का परिवर्तित स्वरूप दृष्टिगत होता है।

शिक्षा की उपरोक्त संकल्पना को भारतीय ज्ञान परम्परा में प्राचीनकाल से अंगीकृत किया जाता रहा है तदनुसार ही प्राचीन शिक्षा केन्द्रों, विश्वविद्यालयों और गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती रही है। शिक्षा के साथ-साथ चरित्र निर्माण पर

¹ विष्णु पुराण

हमारे ऋषि-मुनियों और गुरुओं का विशेष प्रयास रहा है। भारत को चरित्र निर्माण का प्रमुख राष्ट्र समझ कर लोग विदेशों से यहां अपने चरित्र निर्माण की शिक्षा लेने आते थे –

एतद्देशप्रसूतस्य सकासादग्रन्थन्मनः

स्व-स्व चरित्रं शिक्षेरन् पृथ्वियां सर्व मानवाः।।¹

सार

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा की दार्शनिक प्रकृति आध्यात्मिक, नैतिक और बौद्धिक विकास को एकीकृत करने वाले एक समग्र विश्वदृष्टिकोण में गहराई से निहित है। आधुनिक उपयोगितावादी दृष्टिकोण के विपरीत, प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य आत्म-साक्षात्कार (आत्म-ज्ञान) और मुक्ति (मोक्ष) था, जो ज्ञान (विद्या) को उच्च चेतना और नैतिक उत्कृष्टता प्राप्त करने के साधन के रूप में मानता था। वेदों, उपनिषदों, भगवद् गीता और विभिन्न स्मृतियों जैसे मूलभूत ग्रंथों से प्रेरणा लेते हुए, शिक्षा को केवल सूचना के प्रसारण के रूप में नहीं बल्कि अनुशासन (संस्कार), आंतरिक सद्भाव और सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देने वाली एक परिवर्तनकारी प्रक्रिया के रूप में देखा जाता था। शिक्षकों (गुरुओं) ने आध्यात्मिक मार्गदर्शक की भूमिका निभाई, और सीखना गहन रूप से अनुभवात्मक, संवादात्मक और आत्मनिरीक्षणात्मक था। ब्रह्मचर्य (अनुशासित छात्र जीवन), गुरुकुल प्रणाली (आवासीय स्कूली शिक्षा), और श्रवण, मनन और निदिध्यासन (सुनना, चिंतन और ध्यान) पर जोर जैसी अवधारणाएँ प्राचीन भारतीय शिक्षाशास्त्र के एकीकृत और दार्शनिक सार को रेखांकित करती हैं। यह सार इस बात का अन्वेषण करता है कि प्राचीन भारतीय शैक्षिक लोकाचार मूलतः सत्य (सत्य), धार्मिकता (धर्म) और परम वास्तविकता (ब्रह्म) के साथ एकता की खोज थी, तथा समकालीन शिक्षा के लिए कालातीत अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

मुख्य बिन्दु: प्राचीन भारतीय शिक्षा, दार्शनिक आधार, गुरुकुल प्रणाली, विद्या, समग्र शिक्षा, नैतिक और आध्यात्मिक विकास।

परिचय :-

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा की दार्शनिक प्रकृति

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा केवल सूचना या व्यावसायिक कौशल प्राप्त करना नहीं थी, बल्कि आत्म-साक्षात्कार, नैतिक परिष्कार और आध्यात्मिक मुक्ति की ओर एक गहन दार्शनिक यात्रा थी। आधुनिक शिक्षा प्रणालियों के विपरीत, जो अक्सर भौतिक सफलता और अनुभवजन्य ज्ञान पर ध्यान केंद्रित करती हैं, प्राचीन भारतीय शिक्षा स्वयं (आत्मा), ब्रह्मांड (ब्रह्म) और जीवन के अंतिम उद्देश्य (मोक्ष) की आध्यात्मिक समझ में गहराई से निहित थी। वेद, उपनिषद, भगवद् गीता, स्मृति और अन्य शास्त्रीय ग्रंथों ने इस शैक्षिक प्रणाली का आधार बनाया, जिसमें केवल शैक्षणिक उपलब्धि से अधिक सत्य (सत्य), धार्मिकता (धर्म) और आंतरिक परिवर्तन की खोज पर जोर दिया गया।

श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तदनन्तरम्।

निदिध्यासनमित्येतपूर्णबोधस्य कारणम्।।²

¹ मनु स्मृति - अध्याय 2

² शुकविरचितस्य उपनिषद् 3/13

प्राचीन भारतीय शिक्षा का दार्शनिक आधार श्रवण (गुरु की शिक्षाओं को सुनना), मनन (गहन चिंतन) और निदिध्यासन (गहन ध्यान) की त्रयी के इर्द-गिर्द घूमता था, जो शिक्षार्थियों को विषय-वस्तु को याद करने के बजाय ज्ञान को आत्मसात करने के लिए प्रोत्साहित करता था। ज्ञान (विद्या) को पवित्र माना जाता था और इसे भक्ति और अनुशासन के साथ अपनाया जाता था, अक्सर गुरुकुल में - एक आवासीय आश्रम जहाँ छात्र अपने शिक्षक (गुरु) के साथ रहते थे। गुरु-शिष्य परम्परा इस प्रणाली का केंद्र थी, जो विश्वास, विनम्रता और नैतिक जिम्मेदारी पर आधारित रिश्ते को दर्शाती थी। गुरु केवल एक शिक्षक नहीं था, बल्कि एक आध्यात्मिक मार्गदर्शक था जो छात्र को अज्ञानता (अविद्या) से ज्ञान (विद्या) की ओर ले जाता था, अंततः उन्हें मुक्ति की ओर ले जाता था।

शिक्षा व्यापक थी और इसमें न केवल बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रशिक्षण शामिल था, बल्कि नैतिक, शारीरिक और सामाजिक विकास भी शामिल था। व्याकरण, तर्क, दर्शन, खगोल विज्ञान, चिकित्सा और कला जैसे विषयों को नैतिकता और तत्वमीमांसा के साथ पढ़ाया जाता था, जो सीखने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को दर्शाता है। छात्र ब्रह्मचर्य के मार्ग का अनुसरण करता था, ब्रह्मचर्य, सादगी और एकाग्रता द्वारा चिह्नित एक अनुशासित जीवन शैली। जीवन का यह चरण पूरी तरह से ज्ञान और आत्म-नियंत्रण की खोज के लिए समर्पित था, जो एक संतुलित और सदाचारी वयस्क जीवन की नींव रखता था।

प्राचीन भारतीय विश्वदृष्टि ज्ञान को ब्रह्मांडीय व्यवस्था में अपने स्थान को समझने के साधन के रूप में देखती थी। इस प्रकार, शिक्षा स्वाभाविक रूप से व्यक्ति के स्वधर्म (व्यक्तिगत कर्तव्य) और सामाजिक जिम्मेदारी से जुड़ी हुई थी। आदर्श छात्र न केवल बौद्धिक रूप से सक्षम था, बल्कि आध्यात्मिक रूप से जागृत और नैतिक रूप से ईमानदार भी था। शिक्षा ने व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों उद्देश्यों को पूरा किया - इसने आत्मा को ऊपर उठाया और समाज को मजबूत किया। इसका लक्ष्य केवल विद्वान नहीं बल्कि ऋषि, न केवल पेशेवर बल्कि दार्शनिक बनाना था जो ज्ञान, करुणा और अखंडता को मूर्त रूप देते थे।

प्राचीन भारतीय परंपरा में शिक्षा की दार्शनिक प्रकृति मानव जीवन की एक एकीकृत दृष्टि को दर्शाती है, जहाँ सीखना एक पवित्र कार्य है जिसका उद्देश्य व्यक्ति और सार्वभौमिक चेतना के बीच एकता को साकार करना है। प्रतिस्पर्धा और उपयोगिता से प्रेरित दुनिया में, यह प्राचीन दृष्टिकोण शिक्षा के गहरे उद्देश्य की एक कालातीत याद दिलाता है: आत्मा का जागरण और एक न्यायपूर्ण और प्रबुद्ध समाज का निर्माण करना है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम नहीं थी, बल्कि आत्मा के विकास और आत्मसाक्षात्कार का साधन थी। इसका अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' था, जो जीवन के चक्र से मुक्ति है।

1. गुरुकुल परंपरा और नैतिक शिक्षा

गुरुकुलों में विद्यार्थियों को केवल शास्त्र नहीं, बल्कि नैतिकता, अनुशासन, सेवा और त्याग का पाठ भी पढ़ाया जाता था। शिष्य अपने गुरु के आश्रम में निवास करके जीवन के व्यावहारिक और आध्यात्मिक पक्षों को सीखते थे। यह व्यवस्था शिष्य के चारित्रिक और मानसिक गठन पर केंद्रित थी।

2. दर्शनशास्त्र पर आधारित शिक्षा

शिक्षा प्रणाली भारतीय दर्शनों पर आधारित थी जो जीवन, आत्मा, ब्रह्मांड, कर्म और मोक्ष जैसे विषयों पर प्रकाश डालते थे। तत्त्वमसि।¹ न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त – इन छह दर्शनों ने शिक्षा को विचारशीलता और विवेकशीलता प्रदान की। यह व्यक्ति को समग्र दृष्टिकोण से सोचने और जीवन के रहस्यों को समझने में समर्थ बनाते थे।

3. व्यावहारिक और आध्यात्मिक संतुलन

प्राचीन शिक्षा परा (आध्यात्मिक) और अपरा (लौकिक) विद्या दोनों का समन्वय करती थी। जीवन जीने के व्यावहारिक ज्ञान के साथ ब्रह्मज्ञान की ओर भी प्रेरित किया जाता था। सर्वं खल्विदं ब्रह्म।² यह संतुलन शिक्षा को एक व्यापक और संतुलित दृष्टि प्रदान करता था।

4. शिक्षा और धर्म का संबंध

शिक्षा को धर्म से जोड़ा गया, जिसका अर्थ केवल पूजा-पाठ न होकर नैतिकता, कर्तव्य और सामाजिक आचरण से था। शिक्षा द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति की दिशा में मार्गदर्शन होता था। इस प्रकार शिक्षा एक नैतिक और आध्यात्मिक जीवनशैली का निर्माण करती थी।

**सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।
मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव।।³**

5. संवाद पर आधारित शिक्षण पद्धति

प्राचीन भारत में संवाद पद्धति (Dialogue Method) प्रमुख थी, जिसमें शिष्य गुरु से प्रश्न करते थे और उत्तर पाकर ज्ञान प्राप्त करते थे। उपनिषदों में ऐसे कई संवाद मिलते हैं जैसे याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी, या उद्दालक और श्वेतकेतु। यह पद्धति जिज्ञासा, तर्क, और आत्ममंथन को बढ़ावा देती थी।

6. शिक्षा का सार्वभौमिक दृष्टिकोण

शिक्षा केवल एक वर्ग विशेष के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के कल्याण हेतु मानी गई। वैदिक विचारों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे सिद्धांतों के माध्यम से समष्टिगत दृष्टिकोण अपनाया गया। शिक्षा को सामाजिक एकता और विश्वशांति का माध्यम माना गया।

7. शिक्षा और आत्मानुशासन

शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य आत्म-नियंत्रण और मन की स्थिरता था। पतंजलि के योगसूत्र – "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"⁴ – के अनुसार शिक्षा मन की चंचलता को नियंत्रित करने में सहायक होती है। यह व्यक्ति को संयमित, विवेकशील और आत्मनिष्ठ बनाती थी।

¹ छान्दोग्योपनिषद् - 3/8/7

² छान्दोग्योपनिषद् - 3/14/1

³ तैत्तिरीयोपनिषद् - शिक्षावली, अनुवाद 11-1

⁴ योगसूत्र - पतंजलि - 1-2

प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रमुख आचार्य:

- 1) प्रारंभिक वैदिक युग (2000 - 600 ईसा पूर्व) - जो ऋषि नारायण, अत्रि, भारद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, वशिष्ठ, विश्वामित्र, ऋषभ देव, याज्ञवल्क्य, अंगिरस, उद्दालक अरुणि, अष्टावक्र आदि ऋषियों का काल था।
- 2) अक्षीय युग (600 - 185 ईसा पूर्व) - यह कन्नड़ का युग था जिसने वैशेषिक दार्शनिक स्कूल की स्थापना की और परमाणुवाद का सिद्धांत दिया, महावीर जो 24वें जैन तीर्थंकर थे। पाणिनि - व्याकरणविद और अष्टाध्यायी के लेखक, कपिल जिन्होंने सांख्य दर्शन का प्रस्ताव दिया, पिंगल जिन्होंने छंदशास्त्र लिखा - बाइनरी अंक प्रणाली और फिबोनाची संख्या का पहला ज्ञात विवरण जिसे 'मात्रमेरु' कहा जाता है, गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म के संस्थापक, चाणक्य अर्थशास्त्र के लेखक और तक्षशिला विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर थे, पतंजलि योग के दर्शन के विकासकर्ता आदि।
- 3) स्वर्ण युग (184 ईसा पूर्व - 600 ईसवी) - इस अवधि को स्वर्ण युग कहा जाता है क्योंकि इसमें महान विद्वानों ने ज्ञान के लिए समृद्ध योगदान दिया - जैसे - जैमिनी और पूर्व मीमांसा सूत्र के लेखक गोतम, भारतीय तर्कशास्त्र के बौद्ध स्कूल के संस्थापकों में से एक दिग्गज, भाषाविद् भर्तृहरि, बौद्ध धर्म के संस्थापक बोधिधर्म और साथ ही सिद्धसेन दिवाकर जैसे प्रख्यात विचारक जो जैन तर्कशास्त्री और न्यायावतार, सन्मत्तिसूत्र आदि जैसे सूत्रों के मर्मज्ञ थे, नागार्जुन, उमास्वाति आदि।

उपरोक्त बातों से यह पता चलता है कि प्रत्येक क्षेत्र में हमारी मातृभूमि का योगदान इतना अधिक है कि विश्व को इसका बहुत बड़ा ऋण चुकाना चाहिए। इसलिए, विभिन्न क्षेत्रों में प्रदान किए गए ज्ञान के भंडार के लिए दुनिया के विभिन्न हिस्सों के लोगों द्वारा देश के प्रति आभार व्यक्त किया जाता है, जिसे निम्नलिखित से देखा जा सकता है:

“भारत मातृभूमि थी और संस्कृत यूरोप की भाषाओं की जननी थी; भारत हमारे दर्शन की जननी थी; अरबों के माध्यम से हमारे अधिकांश गणितज्ञों की जननी थी; बुद्ध के माध्यम से ईसाई धर्म में सन्निहित आदर्शों की जननी थी; ग्राम समुदाय के माध्यम से स्वशासन और लोकतंत्र की जननी थी।”

“यह सच है कि हिमालय की बाधा को पार करके भी भारत ने पश्चिम को व्याकरण और तर्क, दर्शन और दंतकथाएँ, सम्मोहन और शतरंज और सबसे बढ़कर अंक और दशमलव प्रणाली जैसे उपहार भेजे हैं।”

- विल डुरंट (अमेरिकी इतिहासकार, 1885-1981)

“भारत मानव जाति का पालना है, मानव भाषा का जन्म स्थान है, इतिहास की जननी है, किंवदंतियों की दादी है और परंपराओं की परदादी है। मानव इतिहास में हमारी सबसे मूल्यवान और सबसे रचनात्मक सामग्री केवल भारत में ही संग्रहीत है।”

- मार्क ट्वेन

“हम भारतीयों के बहुत आभारी हैं, जिन्होंने हमें गिनती करना सिखाया, जिसके बिना कोई भी सार्थक वैज्ञानिक खोज संभव नहीं होती।”

- अल्बर्ट आइंस्टीन

शिक्षा के माध्यम के रूप में गुरुकुल:

वेदों का ज्ञान उस समय की गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के माध्यम से दिया जाता था, जो हर क्षेत्र में ज्ञान के रत्नों का सफलतापूर्वक उत्पादन कर रही थी। गुरुकुल प्रणाली को गुरु-शिष्य परंपरा भी कहा जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षण को पवित्र कर्तव्य माना जाता था, जिसे गुरु को शुल्क की परवाह किए बिना पूरा करना होता था। उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे आत्म-बलिदान की भावना से शिक्षण के महान उद्देश्य के लिए अपना जीवन समर्पित करें और समाज ने यह सिद्धांत निर्धारित किया कि जनता और राज्य दोनों को गुरु और गुरुकुल की बहुत उदारता से मदद करनी चाहिए।

समाज ने महसूस किया कि शिक्षा का दान जिसे विद्यादान भी कहा जाता है, सभी दानों में सर्वश्रेष्ठ है। शिक्षा मुख्य रूप से सुनने के माध्यम से दी जाती थी, न कि लिखकर। यही कारण है कि वेदों को श्रुति कहा जाता है (जैसा कि पहले ही ऊपर बताया जा चुका है), जिसका अर्थ है सुनने से प्राप्त होने वाला ज्ञान। इसलिए शिक्षा मुख्य रूप से कानों और होठों के माध्यम से दी जाती थी, न कि लिखने और पढ़ने के माध्यम से। ऐसा इसलिए नहीं था क्योंकि पढ़ने और लिखने की लिपि उपलब्ध नहीं थी, बल्कि इसलिए क्योंकि उन्हें निम्न स्तर का संज्ञानात्मक माना जाता था। चिंतन और मनन के माध्यम से ज्ञान के आदान-प्रदान में अनुभूति, बुद्धि और मजबूत स्मृति विकसित करने की शक्ति थी। शिक्षा सैद्धांतिक से अधिक व्यावहारिक थी।

भारत में हर क्षेत्र में ज्ञान का भंडार है, चाहे वह दर्शनशास्त्र हो, चिकित्सा हो, प्रौद्योगिकी हो, खगोल विज्ञान हो, ज्योतिष हो, गणित हो, अर्थशास्त्र हो, साहित्य हो, संगीत हो, भाषाशास्त्र हो, हर जगह हो। भारत एक ऐसा देश रहा है, जिसे हर शक्तिशाली राष्ट्र ने जीतना चाहा - यह इतना प्रतिष्ठित और बहुत समृद्ध है। फिर भी आश्चर्यजनक रूप से एक आधुनिक कक्षा में हालांकि एक शिक्षक भारत में हुई हमारी महत्वपूर्ण प्रगति और विज्ञान और विकास में इसके योगदान के बारे में बताता है, लेकिन जिस पाठ का संदर्भ बच्चा देता है, उसमें शायद ही कोई ऐसा परिचय होता है जो छात्र को हजारों साल पहले भारतीयों द्वारा विज्ञान के क्षेत्र में किए गए कार्यों से जोड़ता हो। इसलिए, सुकरात, अरस्तू, प्लेटो आदि नाम उन्हें अंगिरस, पिंगला, पाणिनि आदि से अधिक परिचित हैं। हमारी इतिहास की किताबें राजाओं की कहानियों, उनके द्वारा लड़े गए युद्ध या उनके द्वारा कब्जा किए गए क्षेत्रों या पश्चिमी दुनिया के लोगों द्वारा आकर हमें लूटने तक सीमित हैं; हमारे गौरवशाली अतीत के बारे में बताने के बजाय। हमने अपने बच्चों को कभी नहीं बताया कि हेलियोसेंट्रिक सिद्धांत कोपरनिकस द्वारा नहीं दिया गया था, वास्तव में सौर मंडल का वर्णन हजारों साल पहले हमारे वैदिक ऋचाओं में दर्शाया गया था।

इसी तरह हमने कभी नहीं बताया कि पृथ्वी का आकार वैदिक छंदों, सूर्य सिद्धांत, यहाँ तक कि भास्कराचार्य (11वीं शताब्दी ए.डी.) आदि द्वारा बताया गया था। इसलिए सवाल उठता है कि भारतीयों द्वारा ऐसे कौन से योगदान हैं, जो प्राचीन भारतीय ज्ञान के योगदानकर्ता थे और ऐसा क्यों है कि हम अपने बच्चों को यह नहीं सिखाते हैं कि ये सभी तथ्य मूल रूप से भारतीयों द्वारा दिए गए थे। इन सभी सवालों ने शोधकर्ता को तथ्यों की खोज करने और निम्नलिखित अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया।

स्वामी विवेकानंद ने कहा - "जिस राष्ट्र का अपना कोई इतिहास नहीं है, उसका इस दुनिया में कुछ भी नहीं है; अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। इसलिए, जहाँ तक हो सके, पीछे की ओर देखें, पीछे की शाश्वत नींव को गहराई से पियें और उसके बाद आगे की ओर देखें, आगे बढ़ें और भारत को पहले से कहीं अधिक उज्ज्वल, महान और बहुत ऊँचा बनाएँ। हमारे पूर्वज महान थे। हमें यह याद रखना चाहिए। इसलिए, जितना अधिक भारतीय अतीत का

अध्ययन करेंगे, भविष्य उतना ही अधिक गौरवशाली होगा और जो कोई भी अतीत को सभी के द्वार तक लाने का प्रयास करता है, वह राष्ट्र का उपकारक है।"

(स्वामी विवेकानंद पर सम्पूर्ण कृतियों से संकलित)

स्वामी विवेकानंद के इन शब्दों से प्रेरित होकर, वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य भारतीयों द्वारा किए गए योगदान के तथ्यों को सामने लाना है, जिन्हें अन्यथा उचित संज्ञान नहीं दिया गया। इसके अलावा, शिक्षण संस्थानों में पढ़ाई जाने वाली मौजूदा पाठ्य पुस्तकों में बदलाव करने के लिए एक आधार प्रदान करेंगे ताकि बच्चों को हमारे उन महान वैज्ञानिकों से परिचित कराया जा सके, जिनके योगदान के लिए दुनिया को उनका आभार मानना चाहिए।

साहित्य की समीक्षा

कंभमपति (2014) ने 'योग एक प्राचीन चिकित्सा विज्ञान के रूप में: महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव' विषय पर एक शोधपत्र प्रकाशित किया। इस शोधपत्र के लेखकों का दावा है कि योग एक महिला के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों के लिए एक शक्तिशाली साधन है जो जीवन की गुणवत्ता में सुधार करता है और नींद मन को शांति प्रदान करती है और अवसाद, चिंता के स्तर और तनाव से संबंधित समस्याओं के मनोवैज्ञानिक लक्षणों को कम करती है। बीमारी और अनिद्रा, रजोनिवृत्ति के लक्षण और सभी दर्द। यह स्तन कैंसर से पीड़ित महिलाओं को मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य प्राप्त करने में भी मदद करता है।

कुंदेलिया, बोस और सरोच (2014) ने अपने शोध पत्र 'भारतीय चिकित्सा पद्धति में पांडुलिपियाँ - एक समीक्षा' में दावा किया है कि भारत दुनिया की सबसे पुरानी और सबसे बड़ी चिकित्सा पांडुलिपियों में से एक है जिसमें आयुर्वेद, सिद्ध, सो ऋग्-पा और यूनानी-तिब्बत शामिल हैं।

दुबे, त्रिपाठी और निमजे (2015) ने "प्राचीन भारतीय शिक्षा और वर्तमान शिक्षा प्रणाली के तुलनात्मक सामग्री विश्लेषण का एक अध्ययन" पर अपने अध्ययन में प्राचीन और वर्तमान शिक्षा प्रणाली के बीच तुलना प्रस्तुत की। अध्ययन ने प्राचीन शिक्षा की मूल संरचना पर प्रकाश डाला, जिसने समाज में नैतिक, सामाजिक और नागरिक मूल्यों को आत्मसात करने वाली गुणवत्तापूर्ण जनशक्ति का योगदान दिया। लेखकों ने निष्कर्ष निकाला कि शिक्षा का स्तर किसी भी समाज में लोगों के कल्याण, समृद्धि और सुरक्षा का एक प्रमुख संकेतक है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति रोजमर्रा की जिंदगी के कौशल से लैस होते हैं। ज्ञान प्रदान करने और प्राप्त करने की एक प्रणाली से अधिक, शिक्षा को समूह के संस्कृति मानदंडों को अपने युवा सदस्यों तक पहुंचाने का एक प्रयास माना जाता है। इस प्रकार, यह सामाजिक परंपराओं और रीति-रिवाजों को जारी रखना सुनिश्चित करता है। शिक्षा समाज को आकार देने और आधुनिक बनाने के लिए एक शक्तिशाली साधन हो सकती है।

दास और बर्मन (2017) ने अपने प्रकाशित शोधपत्र 'मेडिकल शिक्षा प्रणाली की अतीत और वर्तमान स्थिति पर समीक्षा' में कहा है कि आयुर्वेद वह विज्ञान है जिसने स्वास्थ्य के प्रति समग्र दृष्टिकोण पर जोर दिया है। लेखक को लगता है कि वर्तमान प्रणाली में, चिकित्सा विज्ञान के शिक्षार्थी के लिए तौर-तरीके असंरचित हैं और कई कारकों से समझौता किया गया है। यह अध्ययन प्राचीन चिकित्सा शिक्षा प्रणाली में मौजूद शानदार दृष्टिकोणों को दिखाने के लिए किया गया था जो चिकित्सा शिक्षा के वर्तमान परिदृश्य और स्थिति को पुनर्जीवित कर सकते हैं।

गणित के क्षेत्र में प्राचीन भारत का योगदान:

ज्ञान की किसी भी शाखा के अध्ययन के माध्यम से हम अतीत में झाँककर जान सकते हैं कि हमारे रहन-सहन, रीति-रिवाज, रीति-रिवाज और मानसिक दृष्टिकोण में पिछले युगों में क्या रहा है। यह गणित के इतिहास के साथ भी उतना ही सच है। दरअसल गणित का इतिहास हमारी सभ्यता का इतिहास है। गणित में निहित वैज्ञानिक खोजों ने जीवन जीने के तरीके में बदलाव लाने के लिए काफी हद तक ज़िम्मेदारी ली है और इस तरह संस्कृति लगातार गणित की प्रगति और सुधार से प्रभावित हुई है। इस संबंध में, हॉगबेन ने सही कहा है कि "गणित किसी भी सभ्यता का दर्पण है।"

शून्य की अवधारणा

शून्य की खोज के बारे में हमेशा से ही विवाद रहा है कि इसकी खोज किसने की- पिंगल ने, आर्यभट्ट ने या प्राचीन भारत के किसी अन्य गणितज्ञ ने। पिंगल के छंद शास्त्र (दूसरी शताब्दी ई.पू.) से प्राप्त निम्नलिखित साक्ष्य उस समय शून्य के अस्तित्व के प्रमाण को प्रमाणित करते हैं। ये सूत्र शून्य के 'मूल्यहीन' उपयोग को दर्शाते हैं। लेकिन क्या इसका अर्थ यह है कि शून्य की अवधारणा पिंगल द्वारा दी गई थी? यह अवधारणा बहुत पुरानी हो सकती है और इसका उपयोग पिंगल और उसके बाद आर्यभट्ट और फिर वराहमिहिर ने किया था। श्लोक की पहली पंक्ति जिसमें दशम, शतम् और सहस्रम् जैसे शब्द हैं, स्थान मान दशमलव प्रणाली का वर्णन करते हैं। भारतीयों ने शून्य का उपयोग न केवल गणितीय अभिव्यक्ति के रूप में किया बल्कि दार्शनिक अवधारणा के रूप में भी किया। ईशावास्य उपनिषद में भी शांति मंत्र में एक श्लोक है जो शून्य के दार्शनिक अर्थ का वर्णन करता है।

**पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥**

अर्थ: शून्य या पूर्ण से सब कुछ आया और शून्य या पूर्णता में सब कुछ विलीन हो जाता है, शून्य या पूर्णता ही अस्तित्व रखती है। संस्कृत में 'पूर्णम' का प्रयोग 'शून्य' या 'पूर्णता' को दर्शाने के लिए किया जाता है।

शून्य और स्थानीय मान

यजुर्वेद (अध्याय 17, श्लोक 2) में दस, सौ, हजार आदि की अवधारणा का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

इमाः मेऽअग्रेऽष्टका धेनवः सन्तु —
एकाच दश च, दश च शतं च,
शतं च सहस्रं च, सहस्रं च आयुतं च,
आयुतं च नियुतं च, नियुतं च प्रयुतं च,
प्रयुतं च अर्बुदं च, अर्बुदं च न्यार्बुदं च,
समुद्रश्च, मध्यं च, अन्तः च परार्धश्च —

एता मेऽग्रेऽष्टका धेनवः सन्त्वमुत्राप्मिलोके ॥¹

अर्थ: हे विद्वान पुरुष! मेरे यज्ञ की सामग्री दुधारू पशुओं के समान मुझे सुख देने वाली हो। वे एक हों, दस हों, दस-दस हों, सौ हों, दस सौ हों, हजार हों, दस हजार हों, लाख हों, दस लाख हों, दस लाख हों, करोड़ हों, दस करोड़ हों, सौ करोड़ हों, हजार करोड़ हों, महापद्म के दस गुना हों, शंख के दस गुना हों, समुद्र के दस गुना हों, मध्य के दस

¹ यजुर्वेद अध्याय 17/2

गुना हों, प्रार्थ के दस गुना हों। मेरी वेदी की ये ईंटें दुधारू पशुओं के समान इस लोक और परलोक में मेरे लिए सुख का स्रोत हों।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से निम्नलिखित श्लोक

सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षसहस्रपात।

सभूमिंविश्वतोवृत्त्वाऽत्यतिष्ठदशाङ्गुलम्॥ (पुरुषसूक्तम्) ¹

अर्थ - वह पुरुष हजार सिर वाला, हजार नेत्रों वाला और हजार पैरों वाला है। वह पृथ्वी को सब ओर से घेरे हुए, उससे दस अंगुल आगे तक फैला हुआ है।

यह वेद के प्रसिद्ध पुरुष सूक्त का पहला मंत्र है। यहाँ समस्त सृष्टि की पारलौकिक समग्रता को ब्रह्मांडीय व्यक्ति, समस्त अभिव्यक्ति को जीवंत करने वाली सार्वभौमिक चेतना के रूप में माना गया है। 'पृथ्वी' शब्द को समस्त सृष्टि के अर्थ में समझा जाना चाहिए। 'दशाङ्गुलम्' की व्याख्या दस अंगुल की लंबाई के रूप में की जाती है, इस मामले में इसे हृदय से नाभि की दूरी को संदर्भित करने के लिए कहा जाता है, पूर्व को आत्मा का आसन और बाद को 53 अभिव्यक्तियों के मूल का प्रतीक माना जाता है। 'दस' शब्द का अर्थ 'अनंत' भी कहा जाता है, क्योंकि संख्याएँ केवल नौ तक ही होती हैं और जो इससे ऊपर है उसे संख्याहीन माना जाता है।

यहाँ पुरुषसूक्त में (सहस्र और दशः शब्दों का उल्लेख है। सहस्र का अर्थ सौ और दशः का अर्थ दस है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत ज्ञान के एक उज्ज्वल प्रकाश स्तंभ के रूप में खड़ा था, जिसने अपनी गहन बुद्धि और बौद्धिक गहराई से दुनिया को रोशन किया। सीखने की एक समृद्ध और अटूट परंपरा में निहित, भारतीय ज्ञान प्रणाली मौखिक और लिखित दोनों तरीकों से पीढ़ियों से चली आ रही है। इस विरासत के केंद्र में वैदिक साहित्य है - मानव इतिहास में ज्ञान के सबसे पुराने और सबसे प्रतिष्ठित निकायों में से एक। श्रुति और स्मृति में विभाजित, वेदों ने भारतीय संस्कृति, दर्शन, विज्ञान और आध्यात्मिकता की नींव रखी। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद प्रत्येक ने विचार के विकास में अद्वितीय योगदान दिया, जिसमें तत्वमीमांसा और अनुष्ठानों से लेकर संगीत, स्वास्थ्य और दैनिक जीवन तक के क्षेत्र शामिल हैं। अपौरुषेय माने जाने वाले वेद - दिव्य रहस्योद्घाटन - मानव लेखन से परे हैं और तीन मूल सिद्धांतों पर जोर देते हैं: ज्ञान (बुद्धि), कर्म (सही कार्यवाई), और उपासना (भक्ति)। सीखने की पद्धति भी उतनी ही गहन थी, जिसमें श्रवण (सुनना), मनन (चिंतन) और निदिध्यासन (बोध) शामिल थे, जो शिक्षा के प्रति समग्र और अनुभवात्मक दृष्टिकोण को दर्शाता है। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल अकादमिक नहीं थी; यह जीवन का एक तरीका था जो नैतिक अखंडता, आध्यात्मिक विकास और ब्रह्मांडीय समझ को बढ़ावा देता था। इसकी विरासत आधुनिक दुनिया में भी प्रेरणा और मार्गदर्शन देती है, जो हमें सच्चे ज्ञान और इसकी परिवर्तनकारी शक्ति के कालातीत मूल्य की याद दिलाती है।

¹ ऋग्वेद मण्डल -10 सूक्त-10, मंत्र 1